भरत-कौसल्या संवाद और दशरथजी की अन्त्येष्टि क्रिया

चौपाई :

*** भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुचित अवनि परी झइँ आई॥ देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥1॥

भावार्थ:

भरत को देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जाने से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गए और शरीर की सुध भुलाकर चरणों में गिर पड़े॥1॥

*** मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥ कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा॥2॥

भावार्थ:

(फिर बोले-) माता! पिताजी कहाँ हैं? उन्हें दिखा दें। सीताजी तथा मेरे दोनों भाई श्री राम-लक्ष्मण कहाँ हैं? (उन्हें दिखा दें।) कैकेयी जगत में क्यों जनमी! और यदि जनमी ही तो फिर बाँझ क्यों न हुई?-॥2॥

*** कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥ को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातुजेहि लागी॥3॥

भावार्थ:

जिसने कुल के कलंक, अपयश के भाँडे और प्रियजनों के द्रोही मुझ जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है? जिसके कारण हे माता! तेरी यह दशा हुई॥3॥

*** पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥ धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥4॥

भावार्थ:

पिताजी स्वर्ग में हैं और श्री रामजी वन में हैं। केतु के समान केवल मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मुझे धिक्कार है मैं बाँस के वन में आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषों का भागी बना॥4॥

दोहा :

*** मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि। लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥164॥

भावार्थ:

भरतजी के कोमल वचन सुनकर माता कौसल्याजी फिर सँभलकर उठीं। उन्होंने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से आँसू बहाने लगीं॥164॥

चौपाई :

*** सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥ भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई॥1॥

भावार्थ:

सरल स्वभाव वाली माता ने बड़े प्रेम से भरतजी को छाती से लगा लिया, मानो श्री रामजी ही लौटकर आ गए हों। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्न को हृदय से लगाया। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है॥1॥

*** देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥ माताँ भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछिं मृदु बचन उचारे॥2॥

भावार्थ:

कौसल्याजी का स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं- श्री राम की माता का ऐसा स्वभाव क्यों न हो। माता ने भरतजी को गोद में बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं-॥2॥

*** अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥ जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥3॥

भावार्थ:

हे वत्स! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो। बुरा समय जानकर शोक त्यागदो। काल और कर्म की गति अमिट जानकर हृदय में हानि और ग्लानि मत मानो॥3॥

*** काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥ जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥4॥

भावार्थ:

हे तात! किसी को दोष मत दो। विधाता मेरे िलए सब प्रकार से उलटा हो गया है, जो इतने दुःख पर भी मुझे जिला रहा है। अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है?॥4॥

दोहा :

*** पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर। बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥165॥

भावार्थ:

हे तात! पिता की आज्ञा से श्री रघुवीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिए और वल्कल वस्त्र पहन लिए। उनके हृदय में न कुछ विषाद था, न हर्ष!॥165॥

चौपाई :

*** मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥ चले बिपिन सुनि सिय सँग

लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥1॥

भावार्थ:

उनका मुख प्रसन्न था, मन में न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरह से संतोष कराकर वे वन को चले। यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गईं। श्रीराम के चरणों की अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं॥1॥

*** सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥ तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥2॥

भावार्थ:

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले। श्री रघुनाथ ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किए, पर वे न रहे। तब श्री रघुनाथजी सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गए॥2॥

*** रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥ यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥3॥

भावार्थ:

श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गए। मैं न तो साथ ही गई और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ, तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा॥3॥

*** मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥ जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥4॥

भावार्थ:

अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज नहीं आती; राम सरीखे पुत्र की मैं माता! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है॥4॥

दोहा :

*** कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु। ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु॥166॥

भावार्थ:

कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजमहल मानो शोक का निवास बन गया॥166॥

चौपाई :

*** बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥ भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥1॥

भावार्थ:

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्याजी ने उनको हृदय से लगा

लिया। अनेकों प्रकार से भरतजी को समझाया और बहुत सी विवेकभरी बातेंउन्हें कहकर सुनाईं॥1॥

*** भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥ छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥2॥

भावार्थ:

भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेदों की सुंदर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ जोड़कर भरतजी छलरहित, पवित्र और सीधी सुंदर वाणी बोले-॥2॥

*** जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥ जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥3॥

भावार्थ:

जो पाप माता-पिता और पुत्र के मारने से होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणोंके नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं और जो मित्र और राजा को जहर देने से होते हैं-॥3॥

*** जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥ ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥4॥

भावार्थ:

कर्म, वचन और मन से होने वाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काम में मेरा मत हो, तो हे माता! वे सब पाप मुझे लगें॥4॥

दोहा :

*** जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर। तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥167॥

भावार्थ:

जो लोग श्री हरि और श्री शंकरजी के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा मत हो तो विधाता मुझे उनकी गति दे॥167॥

चौपाई :

*** बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥ कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥1॥

भावार्थ:

जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरों के पापों को कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं तथा जो वेदों की निंदा करने वाले और विश्वभर के विरोधी हैं,॥1॥

*** लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥ पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी

यहु संमत मोरा॥2॥

भावार्थ:

जो लोभी, लम्पट और लालचियों का आचरण करने वाले हैं, जो पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं, हे जननी! यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ॥2॥

*** जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥ जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥3॥

भावार्थ:

जिनका सत्संग में प्रेम नहीं है, जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य शरीर पाकर श्री हरि का भजन नहीं करते, जिनको हरि-हर (भगवान विष्णु और शंकरजी) का सुयश नहीं सुहाता,॥3॥

*** तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥ तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥4॥

भावार्थ:

जो वेद मार्ग को छोड़कर वाम (वेद प्रतिकूल) मार्ग पर चलते हैं, जो ठग हैं और वेष बनाकर जगत को छलते हैं, हे माता! यदि मैं इस भेद को जानता भी होऊँ तो शंकरजी मुझे उन लोगों की गति दें॥4॥

दोहा :

*** मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ। कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥168॥

भावार्थ:

माता कौसल्याजी भरतजी के स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनों को सुनकर कहने लगीं- हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही श्री रामचन्द्र के प्यारे हो॥168॥

चौपाई :

*** राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥ बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥1॥

भावार्थ:

श्री राम तुम्हारे प्राणों से भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी श्री रघुनाथको प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। चन्द्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे, जलचर जीव जल से विरक्त हो जाए,॥1॥

*** भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥ मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥2॥

भावार्थ:

और ज्ञान हो जाने पर भी चाहे मोह न मिटे, पर तुम श्री रामचन्द्र के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत में जो कोई ऐसा कहते हैं, वे स्वप्न में भी सुख और शुभ गति नहीं पावेंगे॥2॥

*** अस कहि मातु भरतु हिएँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥ करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती॥3॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर माता कौसल्या ने भरतजी को हृदय से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए सारी रात बैठे ही बैठे बीत गई॥3॥

*** बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥ मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥4॥

भावार्थ:

तब वामदेवजी और वशिष्ठजी आए। उन्होंने सब मंत्रियों तथा महाजनों को बुलाया। फिर मुनि वशिष्ठजी ने परमार्थ के सुंदर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकार से भरतजी को उपदेश दिया॥4॥

दोहा :

*** तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु। उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥169॥

भावार्थ:

(वशिष्ठजी ने कहा-) हे तात! हृदय में धीरज धरो और आज जिस कार्य के करने का अवसर है, उसे करो। गुरुजी के वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करने के लिए कहा॥169॥